International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-08-2024, Accepted: 15-09-2024, Published: 30-09-2024
Volume 10, Issue 3, 2024, Page No. 61-65

भक्त एवं संत की कसौटी पर कवयित्री मीरा

मौसम तिवारी, डॉ. स्नेहलता दास
हिंदी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, विद्या विहार, भुवनेश्वर, ओड़िशा, भारत

सारांश
हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल' सदैव से आकर्षण का केंद्र रहा है। "लक्ष्य एक मार्ग बहुतेरे" यही उक्ति इस काल के ईश्वर प्राप्ति के विविध मार्गों (चाहे वह संतों की हो अथवा भक्तों की) के लिए सर्वथा उपयुक्त विदित होता है। किसी भी कवि अथवा कवयित्री को संत अथवा भक्त के रूप में प्रतिष्ठित करने से पूर्व उन पर विषद चर्चा–परिचर्चा तथा विमर्श की आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख कवयित्री 'मीरा' की इसी पृष्ठभूमि पर जाँच–पड़ताल करता है।

मूल शब्दः मीरा, संत काव्य के तत्व, भक्ति काव्य के तत्व, दीक्षा मार्ग

हिंदी साहित्य के इतिहास में पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल संवत 1375 से 1700) के अंतर्गत एक कवयित्री को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ये कवयित्री गायकों एवं भक्तों के अतिरिक्त सामान्य जन के बीच भी आदृत हुई हैं। वर्तमान परिस्थिति में इनका अध्ययन करना विशेष रूप से प्रेरणादायक है क्योंकि उन्होंने अपने समय में वे सभी कार्य किए जो उचित तो थे परंतु समाज स्वीकृत नहीं और आजीवन संघर्षरत रहीं। इनके प्रेम एवं भक्ति की कथा जन–जन को ज्ञात है। कृष्ण–प्रेम में दीवानी होकर पग में घुंघरू बांध द्वारिका के रणछोड़ जी के मंदिर में सुध–बुध खोकर नृत्य करने वाली हिंदी की प्रमुख कवयित्री मीरा ही प्रस्तुत आलेख का विषय हैं।

मीराबाई (सन् 1516 से 1546 ई.) का जन्म मेड़ता के निकट 'कुड़की' गांव में राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। मीरा इस शाखा के प्रवर्तक राव दादू के पुत्र रावरत्न सिंह की पुत्री थीं। दो वर्ष की आयु में उनकी माता स्वर्गवासी हो गईं। मेड़ता में साधुओं के सत्संग में इनका समय बिता और उनका विवाह राजपूतों में सर्वश्रेष्ठ चित्तौड़ के सिसोदिया वंश के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ। खेद की बात यह है कि विवाह के सात वर्ष बाद भोजराज की मृत्यु हो गई परंतु मीरा अपने प्रियतम की खोज में वृंदावन को चलीं। वहाँ से द्वारिका आईं और जीवन भर संघर्षों को झेलती हुई भजन–कीर्तन करते हुए उन्होंने अपनी इहलौकिक लीला समाप्त की।

आलोचना का आधार

हिंदी साहित्य के भक्ति काल में भक्ति का आधार ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूप मिलते हैं। जहाँ सगुण भक्तों ने अपने आराध्य का गुणसहित साकार रूप देखा वहीं निर्गुण संतों ने अपने इष्ट को गुणातीत तथा निराकार माना। आलोच्य कवयित्री मीरा के संबंध में प्रस्तुत लेख इस प्रश्न पर केंद्रित है कि वे भक्त कवयित्री अर्थात सगुण मार्ग का अनुसरण करने वाली थीं अथवा निर्गुण ब्रह्म की उपासना के मार्ग पर चलने वाली संत कवयित्री थीं? सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि मीरा तो प्रेम–योगिनी थीं, वे अपने इष्ट–देव कृष्ण के समक्ष कीर्तन किया करती थीं। उन्होंने ख्याति अथवा अर्थप्राप्ति हेतु सचेष्ट कविकर्म करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके पदों को लिपिबद्ध करने का कार्य उनके द्वारा नहीं हुआ। अतः उनके विषय में कुछ भी निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न यह कह कर कर पाना कि यह अंतःसाक्ष्य पर आधारित है अनुचित होगा। परंतु जब यह प्रश्न प्रत्यक्षतः उपस्थित हो ही चुका है तो इसका समाधान करने का प्रयास निश्चय ही उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर किया जाएगा। निम्न में भक्ति परंपरा एवं संत परंपरा के तत्वों की उपस्थिति के आधार पर मीराबाई का उचित मूल्यांकन करने का प्रयास किया जा रहा है;

मीरा में भक्ति काव्य परंपरा के तत्व

कवि का कार्य है वह अपने मनोभावों को स्वाधीनतापूर्वक प्रकट करे और यही कार्य कवयित्री मीरा ने पूर्णतया किया। सगुणवादियों में ईश्वर के सगुण रूप के चित्रण की विशेषता पाई जाती है। मीरा सगुण कृष्ण की उपासिका थीं। उनके कृष्ण सिर पर मयूर पंख का मुकुट धारण किए, मकर की आकृति के कुंडलों को कानों में पहने हुए, मस्तक पर लाल तिलक से तिलकित, विशाल नेत्रों वाले, श्याम देहधारी मोहिनी मूर्तिवाले, होठों पर मुरली से अमृत स्वर प्रस्फुटित करने वाले, हृदय पर वैजयंती की माला को डाले हुए, संतो को सुख प्रदान करने वाले, भक्त वत्सल, अविनाशी एवं नित्य सौंदर्यमयी छवि के रूप में उनके पदों में विराजमान हैं। इनके दर्शन हेतु उनका यह पद दृष्टव्य है;

"बस्याँ म्हारे णेणणमाँ नन्दलाल।
मोर मुगट मकराक्रत कुण्डल अरुण तिलक सोहाँ भाल।
मोहन मूरत साँवराँ सूरत णेणा बण्या विशाल।
अधर सुधा रस मुरली राजाँ उर बैजन्ती माला।
मीराँ प्रभु सन्ताँ सुखदायाँ भगत बछल गोपाल।"

यहाँ मीरा के सगुण आराध्य से परिचित होकर उन्हें भक्त कवि कह देना सर्वथा उचित न होगा क्योंकि जब संत कबीर अपने ईश्वर को 'राम' कहकर संबोधित करते हैं, उन्हें 'पुहुप बांस में पातरा' मानते हैं, जब उन्हें 'भारी और हल्का' के बीच तुलना कर बताने का प्रयत्न करते हैं, जब वे अपने ईश्वर को 'अखंड ज्योतिपुंज' के रूप में व्याख्यायित करते हैं तब वे भी अपने निर्गुण ईश्वर को एक रूप ही देने का प्रयत्न कर रहे होते हैं। अतः ईश्वर के स्वरूप वर्णन के आधार पर मीरा को स्पष्ट रूप से भक्त कवि कह दें तो यह उचित न होगा क्योंकि भक्त को ईश्वर से अभिप्राय है, तात्विक भेद से नहीं।

'गोपीभाव, कांताभाव की भक्ति' के आधार पर मीरा के काव्य की परख करें तो आलोचक मीरा में गोपीभाव के होने की बात करते हैं। डॉ. रामकिशोर शर्मा एवं डॉ. सुजीत कुमार शर्मा अपने 'मीराबाई की संपूर्ण पदावली' में लिखते हैं कि "मीरा ने पूरी तन्मयता से गोपीभाव को आत्मसात किया है"[1] परंतु अपनी इसी

किताब की भूमिका में भी लिखते हैं कि "मीरा में रचनात्मक सजगता है और गोपीभाव का स्वतंत्र चित्रण है। चूँकि वह स्त्री थीं अतः गोपीभाव को उनके ऊपर ज्यों–का–त्यों आरोपित करने की भूल विद्वानों ने की है।"[2] गोपी भाव का एक पद द्रष्टव्य है:

"माई म्हाँणे सुपणा माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पय कोटाँ जणाँ पधार्यौं दूल्हो सिरी व्रजनाथ।
सुपणा माँ तोरण बँध्यरी सुपणा माँ गह्या हाथ।
सुपणा माँ म्हारे परण गया पायाँ अचल सोहाग।
मीराँ रो गिरधर मिल्यारी, पुरब जनम रो भाग।"

इसमें मीरा अपने को कृष्ण की परिणीता मानती हैं। उनका कृष्ण के साथ विवाह स्वप्न में घटित हुआ है।
जिस गोपीभाव, कांताभाव की बात कर मीरा में भक्त कवि होने का एक और गुण ढूंढने का प्रयत्न किया जा रहा है वही भाव कबीर जैसे संत कवि में भी है। एक युवती जिस तरह से अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पण एवं राग रखती है उसे तरह का समर्पण भाव क्या कबीर में तब परिलक्षित नहीं होता जब वे कहते हैं कि "हरी मेरे पिउ मैं हरि की बहुरिया"? मीरा की तरह आध्यात्मिक विवाह का चित्रण कबीरदास ने भी किया है। उनके प्रसिद्ध पद "दुलहिन गावहु मंगलाचार हमारे घर आये राजा राम भरतार" में इसी तरह का भाव समाहित है। अपितु भक्ति–प्रेम में व्याकुल भक्त केवल अपने इष्ट के साथ एकाकार होना चाहता है उसे संसार की किसी अन्य बात की अपेक्षा नहीं होती। ईश्वर को अपना सर्वस्व (पति, भरतार सर्वस्व के प्रतीक हैं) मान लेने का गुण संतों एवं भक्तों दोनों में ही देखने को मिलता है। इसका निष्कर्ष डॉ. बच्चन सिंह की उक्ति से समझिए कि, "वास्तविकता तो यह है कि मीरा को किसी दूसरे की भावभूमि में, चाहे वह गोपीभाव की भूमि हो या राधाभाव की, प्रवेश करने की आवश्यकता ही नहीं थी। वे स्वयं भाव स्वरूप हैं।"[3]
दास्यभाव की भक्ति भक्त कवियों की विशिष्टता है। मीरा की मधुरा भक्ति में प्रेयसी और परिणीता दोनों ही भावों का अद्‌भुत सामंजस्य है। वह कृष्ण के चरणों की सेविका हैं;

"मोती चौक पुरावाँ णेणाँ, तण मण डाराँ वारी।
चरण सरण दी दासी मीराँ, जणम जणमरी क्वाँरी।।"
"मीरा के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल"

क्या यह दास्यभाव की भक्ति केवल भक्तों में ही है? संत कवि कबीर जब "मैं गुलाम मोही बेची गोसाई" गाते हैं तो उनके भीतर भी अपने ब्रह्म के दास होने का भाव निहित है। यद्यपि संतों ने ज्ञान मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है परंतु क्या वे भक्त कवियों की भाँति प्रभु प्रेम में मतवाले होकर उनकी दासता स्वीकार नहीं करते? अतः केवल दास्य भाव के आधार पर मीरा को भक्त कवि कहना असंगत प्रतीत होता है।
मीरा में भक्त कवियों के समान नवधा भक्ति का दर्शन प्राप्त होता है। उन्होंने सगुण भक्त कवियों की भाँति कृष्ण मंदिर में जाकर दर्शन, अर्चन तथा पूजन करने का कार्य भी किया। उनके पदों में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पदसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि भागवत पुराण के भक्ति के नौ प्रकार देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ;

श्रवणः "म्हाँ सुण्याँ हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भव तारण।"
कीर्तनः "गायाँ गायाँ हरि गुण निसदिन, काल ब्याल री बाँची।
स्याम विणा जग खाराँ लागाँ, जगरी बाताँ काँची।।"
स्मरणः "पिया थारे नाम लुभाणी जी।
नाम लेताँ तिरताँ सुण्याँ, जग पाहण पाणी जी।"
भोग निवेदनः

"थें जीम्या, गिरधरलाल।
मीरा दासी अरज कर्यौं छै, म्हारो लाल दयाल।
छप्पण भोग छतीसाँ बिंजण, पावाँ जण प्रतिपाल।
राजभोग आरोग्याँ गिरधर, सणमुख राखाँ थाल।
मीराँ दासी सरणाँ ज्याशी, कीज्याँ बेग निहाल।"

परंतु केवल ठोस वर्गों में बाँट देने से संतों में इस प्रकार की भक्ति का अभाव दिखाकर मीरा को भक्त कवि घोषित नहीं किया जा सकता।

आलोचकों का मानना है कि मीराबाई में स्वकीया भक्ति भावना की विद्यमानता है। मीराबाई एक ओर भक्त कवि की भाँति विनय, भक्ति स्वरूप वर्णन और सेवक–सेव्य भाव की भक्ति का चित्रण अपने पदों में करती हैं तो दूसरी ओर उनमें स्वकीया–परकीया भाव–चेतना का द्वंद भी दिखाई देता है। डॉ. रामकिशोर शर्मा एवं डॉ. सुजीत कुमार शर्मा अपने 'मीराँबाई की संपूर्ण पदावली' में लिखते हैं कि, "मीरा की भाव–चेतना में स्वकीया–परकीया का द्वंद दिखाई देता है। भक्त एवं भगवान के अद्वैत एवं द्वैतभाव की मनःस्थिति जिस तरह संतों में दृष्टिगत होती है, उसका हल्का आभास मीराँ में भी है।"[4] वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह अपने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में लिखते हैं कि, "उनकी प्रेम–साधना स्वकीया की प्रेम–साधना थी– 'जाकर सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।' वह प्रभु को 'पतिवरता' की सेज पर पधारने का आमंत्रण देती हैं। उनके स्वागत में कुलवधू की तरह शृंगार करती हैं। उन्होंने गोविंद से लुक–छिपकर प्रेम नहीं किया था बल्कि ढोल बजाकर, प्रेम देकर मोल लिया था। उनके प्रेम में कहीं उच्छृंखलता नहीं है।"[5] इन दोनों कथनों का सामंजस्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन से किया जा सकता है, "इनके माधुर्यभाव ने हिंदी–भाषी क्षेत्र के बाहर के भी सहृदयों को आकृष्ट और प्रभावित किया है। माधुर्यभाव के अन्यान्य भक्त कवियों की भाँति मीरा का प्रेम निवेदन और विरह–व्याकुलता अभिमानाश्रित और अध्यंतरित नहीं है, बल्कि सहज और साक्षात् संबंधित है।"[6] अर्थात यद्यपि वे माधुर्यभाव की स्वकीया भक्ति करती हैं परंतु उनकी भक्ति में वे कभी कृष्ण में स्वयं को लीन करती दिखती हैं तो कभी उनको अपने बाहर द्वारिका की गलियों में ढूँढती नजर आती हैं। उदाहरणार्थ;

"म्हारा पिया म्हारे हियड़े बसताँ णाँ आवाँ णा जाती।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवाँ दिण राती।"

यहाँ मीरा इस तथ्य से अवगत हैं कि उनके पिया उनके हृदय में मौजूद है और उन्हें कहीं आना–जाना नहीं पड़ता है तो वे गोकुल की कुँज गलियों में किसको ढूँढने जा रही हैं। यद्यपि स्वकीया, माधुर्यभाव की भक्ति भक्त कवि की विशेषता मानी जाती है परंतु यहाँ मीरा को इस आधार पर भक्त कवि मान लेना उचित नहीं होगा क्योंकि निर्गुणवादी संत कवि कबीर में जहाँ आत्मा–परमात्मा की एकता का अनुभव अधिक प्रखर है, लेकिन विरह–भाव की अभिव्यक्ति के लिए द्वैत का सहारा लिया गया है। वहीं मीरा के यहाँ तो यह भाव और भी चटकीला है।
यहाँ विशेष द्रष्टव्य यह है कि मीरा ने यद्यपि सगुण–साकार कृष्ण की उपासना की और प्रायः सभी इतिहासकारों ने उन्हें सगुण भक्ति धारा में कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत स्थान दिया परंतु मीरा ने जिस भाँति कृष्ण से प्रेम किया और जिस विरह–व्याकुलता का वर्णन मीरा कर रही थीं वह इनसे सर्वथा भिन्न था। मीरा का प्रेम और विरह दैहिक नहीं अलौकिक था। अपने विरह एवं प्रेम वर्णन में अन्य सगुन कृष्णभक्त कवियों की भाँति उन्होंने अश्लीलता का समावेश नहीं होने दिया।

मीराबाई में अपने प्रभु के प्रति संपूर्ण समर्पण का भाव है। आप कह सकते हैं कि यह भक्त कवियों की विशेषता है परंतु यह आत्मसमर्पण का भाव तो भक्त एवं संत दोनों ही वर्गों के कवियों में है। मीरा के समर्पण का एक चित्र देखिए;

"हरि म्हारा जीवन प्राण अधार।
और आसिरो णा म्हारा थें विण, तीनूँ लोक मझाँर।"

यहाँ मीरा अपना एकमात्र आश्रय 'कृष्ण' को ही मानती हैं। इस विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास' में लिखते हैं कि, "उनके कुछ पदों में निर्गुण भाव की भक्ति भी मिलती है। परंतु गिरिधर नागर को उद्देश्य करके लिखे गए भजनों में मीराबाई जिस प्रकार सहज और स्व–स्थित दिखती हैं उस प्रकार इन भजनों में नहीं दिखतीं। वस्तुतः अध्यंतरित, अनाभिमानसिद्ध, सहज आत्मसमर्पण का वेग जितना सगुणमार्ग के भजनों में हैं उतना निर्गुणमार्ग के भजनों में नहीं है।"[7] आचार्य द्विवेदी के इस कथन से यह तो स्पष्ट हो गया है कि मीरा ने सगुण भक्तों एवं निर्गुण संतो दोनों ही की शैली में भजन रचना की परंतु जहाँ तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सगुण का पक्ष भारी कर दिखाया है यह उनकी अपनी रुचि एवं तर्क का विषय है। यहाँ बस इतना कहा जा सकता हैं कि मीराबाई ने कवि कर्म करने के उद्देश्य से पद रचना नहीं की अतः उनके पदों पर विचार करते हुए उनके व्यक्ति रूप एवं भक्त रूप को ध्यान में रखकर ही उनके कवयित्री रूप के विषय में निष्कर्ष निकाल पाना संभव होगा।
आगे कवयित्री मीरा में संत काव्य परंपरा की विशेषताओं को देखने एवं उसके आधार पर उन्हें भक्त कवि या संत कवि की कोटि में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

मीरा में संत काव्य परंपरा के तत्व

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ में मीरा के संबंध में लिखते हैं कि, "मीराबाई की उपासना 'माधुर्यभाव' की थी अर्थात वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। पहले यह कहा जा चुका है कि इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है।"[8] आचार्य शुक्ल के इस कथन ने हमारे समक्ष एक नया प्रश्न उपस्थापित कर दिया है कि यदि इनमें रहस्यवाद की प्रवृत्ति थी तो वे भक्त कवयित्री किस प्रकार हुईं? आगे वे जोड़ते हैं कि, "इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफी कर रहे थे अतः उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा"[9] अब आचार्य शुक्ल यहाँ मीरा में सूफी उपासना के भी दर्शन करवाते नजर आते हैं। रहस्यवाद की प्रवृत्ति तो संतो की प्रमुख विशेषता है अतः क्या इस आधार पर मीराबाई को संत कवयित्री मान लें? मीरा के पदों में यद्यपि निर्गुण पंथ की भाँति अनहद नाद, शून्य महल, सूरत, त्रिकुटी, योग आदि का प्रयोग मिलता है परंतु दूसरी ओर वे सूरदास की तरह विनय के पद भी रचती हैं। इन रहस्यवादी शब्दों के प्रयोग का उदाहरण द्रष्टव्य है;
'निर्गुण के अगम देश' का प्रयोगः

"चालाँ अगम बा देस, काल देख्याँ डराँ।
भराँ प्रेम था हौज, हंस केल्याँ कराँ।"

अर्थात हे मन! उस अगम देश को चलो, जहाँ मृत्यु का कोई भय नहीं है। जहाँ भक्त को देखकर काल डर जाता है।

'रंग महल' शब्द का प्रयोगः

"स्याम तुम्हारे कारण राधा, सूक गई तिणका सी।
सोलह सहस्र गोपिका त्यागी, रंग महल से झाँसी।"

अर्थात कृष्ण के कारण राधा सूखकर तिनके के समान हो गई हैं। कृष्ण ने सोलह हजार गोपियों को त्याग दिया और रंगमहल पर आसक्त हो गए।

'घट' शब्द का सुंदर प्रयोगः

"म्हारा घट में भयो अँधारौ, आँण करौ उजियारों रे।
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, विरह अगनि मति जालौ रे।"

अर्थात मेरी देह के अंदर अंधेरा छा गया है, आकर उजाला कर दो।
'सुन्न महल', 'त्रिकुटी' तथा 'साहिब' जैसे शब्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है;

"नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ री।
इन नैनन मेरी साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोका, तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, बार–बार बलिजाऊँ री।"

'आत्मज्ञान' की बात करती मीरा के पद को देखिएः

"पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हाँसी ।
आत्मज्ञान बिन नर भटकत है, कहाँ मथुरा कहाँ कासी।"

संत कवियों की भाँति शब्दों एवं भावों को मीरा में देखने के उपरांत इसके उत्तर स्वरूप डॉ. बच्चन सिंह के 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' से यह उक्ति उद्धृत की जा सकती है कि, "एक ओर उनमें दांपत्य राग है तो दूसरी ओर असह्य विरहाकूलता। उनका स्वच्छंद व्यक्तित्व किसी रूढ़िग्रस्त धार्मिक घेरे में नहीं बँधता।"[10]
संत कवियों में ब्रह्म से विरह की व्याकुलता की भावना कुछ इस प्रकार विद्यमान है;

"बिरह–भुवंगम तन बसे, मंत्र न लागै कोई।
राम–वियोगी ना जिबै, जिबै तो बौरा होई।।"

इसी भावना का दर्शन मीरा में द्रष्टव्य है;

"विरह भुवंगम डस्याँ कलेजा लहरि हलाहल जागी।
मीरा व्याकुल सति अकुलाणी स्याम अंगा लागी।।"

अर्थात मीरा कह रही हैं कि विरहरूपी साँप ने कलेजे को डस लिया। विष की लहर शरीर में व्याप्त हो रही है। प्रभु से वियोग की स्थिति में विरहिणी मीरा का एक और पद देखिएः

"बिरहनी बावरी सी भई।
ऊँची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई ।
ले अँचरा मुख अँसुवन पोंछत उबरे गात सही।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कही।"

क्या इस विरहानुभूति के आधार पर मीरा को संत कवि घोषित कर दिया जाए? नहीं, क्योंकि विरह तो भक्त कवि तुलसीदास को भी व्यापता है, विरह उन सभी को व्यापता है जिन्हें किसी से प्रेम है और ईश्वर प्रेम में तो संत और भक्त दोनों ही कवि विरही हैं। संत कवियों की विशेषता है कि वे अपनी स्वानुभूतियों को ही शब्दों के मोती में पिरोकर संसार को संदेश दिया करते थे। मीराबाई ने भी अपने जीवन में घटित घटनाओं को अपने पदों में प्रकाशित किया। वे राणा के द्वारा प्रेषित विष प्याले के प्रसंग में लिखती हैं;

"विष को प्यालो राणो जी भेज्यो, द्यो मेड़ तणी णे पाय,
कर चरणामृत पी गयी रे, गुण गोविन्द रा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ाय।"

इसके संबंध में 'मीराबाई की संपूर्ण पदावली' में लिखा गया है, "अन्य भक्त कवियों की तुलना में मीरा का द्वंद उनका भोगा हुआ यथार्थ है देखा हुआ नहीं।"[11] अतः मीरा की स्वानुभूति के आधार पर उन्हें केवल संत कवि मान लेने में धृष्टता क्या है? धृष्टता यह है कि कवि अपनी स्वानुभूति के बिना केवल कल्पना के आधार पर रचना नहीं कर सकता। भक्त कवि अपनी स्वानुभूति को अपने इष्ट के चरित्र के माध्यम से व्यक्त करते थे जबकि संत कवि प्रत्यक्ष रूप से उस घटना को गाकर सुना देते थे, परंतु स्वानुभूति तो दोनों में ही है अतः केवल संत कवि क्यों कर कहें?
मीरा संत कवियों की भाँति निवृत्तिमार्गी या वैरागिणी हैं। वह संतों की भाँति ब्रह्म की खोज में भटकती भी हैं। वे अपने ब्रह्म से संत कवियों की भाँति कहती हैं, "तुम बिच हम बीच अंतर नहीं, जैसे सूरज गामा।" वहीं दूसरी ओर वृंदावन, द्वारिका के भ्रमण करती हैं। उन्होंने सांसारिक लोभ, मोह, सुख–सुविधा, राजमहल, आभूषण, मूल्यवान वस्त्र सब कुछ स्वेच्छा से त्याग दिया। उनकी ननद ऊदा ने जब उनसे प्रश्न किया;

"खीर–खाँड को भोजन जीमो भाभी ओढ़ो दिखणी चीर।
राणा सों वर पारियों में भाभी, सब महलायं थांरो सिर।।"

मीरा इसी संवाद में संसार की नश्वरता, धन, वैभव की क्षणिकता का उल्लेख करती हुई कहती हैं;

"मान लो जी म्हारी, अब मीराँ म्हारी थानै सखियाँ बरजै सारी,
राजा बरजै, राणी बरजै, बरज बरज सब हारी।।"

आभिजात्य का विरोध संतों की विशेषता रही है। मीराबाई एक ओर आभिजात्य को छोड़ चुकी थीं दूसरी ओर अपने प्रभु कृष्ण की दासी बनना ही उन्हें स्वीकार्य था। उदाहरणार्थः

"म्हाणे चाकर राखाँजी, गिरधारी लाला चाकर राखाँजी।
चाकर रहस्यूँ बाग लगास्यूँ नित उठ उरसण पास्यूँ।।"

आज के समय पति को प्रभु और पत्नी को दासी नहीं कहा जा सकता। मीरा ने वास्तविक जीवन में इसका तिरस्कार कर दिया था परंतु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वे अंततः तो कृष्ण की भक्त ही थीं। अतः भगवान को प्रभु कहना स्वाभाविक है। संतों ने समाज में आभिजात्य पर कटाक्ष किया था परंतु इस आधार पर निर्णय लेना एकपक्षिय सिद्ध होगा।
संत कवियों के समान कवयित्री मीराबाई ने समाज सुधार का कार्य किया। जब मध्यकाल स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा था, उनको चार–दिवारी में कैद करके रखना चाहता था और रखता भी था तब मीरा ने सबके समक्ष अपना प्रेम प्रकट किया, वैधव्य जीवन को अपनाने से इनकार कर दिया, जिसके कारण उनको तत्कालीन समाज ने कितना बुरा–भला कहा, यहाँ तक कि उनकी जान पर बन उन्हें अपने परिवार वालों ने विष का प्याला तक भेजा। मीरा तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं हुईं, क्योंकि वे स्वयं को अजर स्वामी की चिरसुहागिनी मानती थींः

"जग सुहाग मिथ्या री सजनी हांवा हो मिट जासी।
वरन् कर्यां हरि अविनाशी म्हारे काल–व्याल न खासी।।"

जिस समय स्त्रियों को वेद एवं ज्ञान से वंचित रखना ही सर्वोचित था उसी समय संत समागम कर मीरा ने स्त्री स्वतंत्रता की नींव डाली। उन्हें लोक से कोई भय नहीं थाः

"कोई निंदो कोई बिंदो म्हें तो, गुण गोविंद का गास्याँ।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारे, उण मारण म्हे जास्याँ।"

अपने काव्य में मीरा पुरुषसत्ता को चुनौती देती दिख जाएँगी। कवयित्री मीरा को राजा से कोई भय नहीं था। भय था तो केवल अपने प्रभु के रूठ जाने सेः

"सीसोद्यो रूठयो तो म्हाँरो काँई करलेसी।
म्हें तो गुण गोविंद का गास्याँ, हो भाई।।"

इस संबंध में डॉ. रामकिशोर शर्मा एवं डॉ सुजीत कुमार शर्मा लिखते हैं, "मीरा मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य में पुरुषसत्ता को ही चुनौती दे डालती हैं, वह सभी पुरुषों को स्त्री भाव से युक्त भक्त के रूप में देखती थीं। मीराँ ने ऐसे अविनाशी पति का वरण किया था जो सबका स्वामी हो।... मीराँ सामान्य पुरुषों के अहंकार एवं श्रेष्ठता को न्यून सिद्ध करने के लिए कृष्ण को प्रत्यक्ष करती हैं।... किसी बादशाह या राजा का गुलाम होने की तुलना में भगवान का गुलाम होना ज्यादा बड़ी चीज़ है।"[12]

"हेल्या मेल्याँ कामणा म्हारे, म्हा मिल्या सरदाराँ री।
कामदाराँ सूँ काम णाँ म्हारे, जावाँ म्हा दरबाराँ री।।"

अर्थात छोटे लोगों के प्रति मेरी कामना नहीं है जो हिलने–मिलने वाले हैं। मुझे तो सीधे सरदार ही मिल गया। अर्थात मीरा जिसकी दासी हैं राजा–महाराजा भी उसके गुलाम हैं।
संतों की भाँति मीरा भक्ति के अंतर्गत सामाजिक समानता की बात करती हैं। वे कहती हैं कि जो असली भक्त होगा वह जाति–पाँति तथा लिंग के आधार पर किसी के प्रति भेदभाव नहीं करेगा। जिस देश में समानता का व्यवहार करनेवाले भक्त नहीं रहते वहाँ सब कुछ कूड़ा है। मीरा राणा से कहती हैं;

"नहिं सुख भावै थारो देसलड़ो रँगरूड़ो।
थाँरो देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ौ।।"

साथ ही बाहर संसार में रहना एवं अपने सतीत्व की रक्षा करना सरल नहीं होता भले ही वे साधुओं के बीच ही क्यों न हो। ऊपर से संसार में तिरस्कार का पात्र बनना। मीरा ने उपर्युक्त सभी चीज़ें सहीं और फल यह हुआ कि आगे चलकर सभी लोग मीरा के कृष्ण गीतों को सुनने लगे। गोपी या राधा उनके लिए पौराणिक सच्चाई थी परंतु मीरा उनके लिए प्रत्यक्ष थी और आज हमारे लिए ऐतिहासिक सच्चाई हैं। अतः लोक के लिए अधिक विश्वसनीय एवं ग्रहणीय और नूतन हैं। इस भाँति मीरा में संत कवियों की सबसे बड़ी विशेषता समाज सुधार की भावना की झलक देखने को मिलती है।
संत कवियों की भाँति मीरा सत्संग में भी भाग लेती थीं। इसी के द्वारा उन्हें भक्ति मार्ग पर चलने का निदर्शन मिलता था। सत्संग करती मीरा की पदावली देखिएः

"साज सिंगार बाँध पग घूँघर, लोकलाज तज णाँची।
गयाँ कुमल लयाँ साधाँ संगम स्याम प्रीत जग साँची।।"
"बरजी री म्हाँ स्याम विणा न रह्याँ।
साधाँ संगम हरि सुख पास्यूँ जगसूँ दूर रह्याँ।"
"आज म्हाँरो साधु जन नी सँगरे, राणा म्हाँरा भाग भल्या।
साधू जन नी संग जो करिये, चढ़ेते चौगणी रंग रे।"

इस सत्संग की महिमा का बखान भक्त कवि तुलसी ने भी किया है अतः निष्कर्ष तक पहुँचाने के लिए यह एक तथ्य पर्याप्त नहीं। उनकी दीक्षा मार्ग को भी देखना आवश्यक है।

मीरा का दीक्षा मार्ग

कोई कवि किस परंपरा, किस मार्ग का है यह उसके गुरु एवं उसने जिस मार्ग में दीक्षा ली हो उससे स्पष्ट ज्ञात हो सकता है परंतु कवयित्री मीराबाई के गुरु के विषय में किसी भी इतिहास ग्रंथ में प्रामाणिकता से नहीं बताया गया। अधिकतर 'रैदास' को गुरु मानने को उपदेश देते हैं परंतु इसका स्रोत भी आज अप्रामाणिक सिद्ध हो चुका है। इसकी पुष्टि एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन से ले सकते हैं कि, "उनके पदों में रैदास को गुरु के रूप में स्मरण किया गया है। यह कहना बहुत कठिन है कि ये पद कहाँ तक प्रामाणिक हैं। उनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने जीवगोस्वामी से दीक्षा ली थी। इस प्रकार उनका संबंध एक तरफ और सगुणमार्गी भक्तों से सिद्ध होता है तो दूसरी तरफ निर्गुणमार्गी भक्तों से भी उनका संबंध जोड़ा जाता है। फिर उनके भजनों में किसी ऐसे गुरु की भी चर्चा आती है जो नाथपंथी साधु जान पड़ते हैं।"[13]

कवयित्री मीरा सभी संतो–भक्तों का आदर सम्मान करती थीं किंतु अपनी स्वतंत्रता की कीमत पर वह किसी संप्रदाय के महंत के अधीन नहीं हुईं। अपने समय के बड़े शक्तिशाली आचार्य एवं भक्तों के संरक्षक वल्लभाचार्य के संप्रदाय में भी वह सम्मिलित नहीं हुईं। अर्थात वे अत्यंत उदार मनोभावापन्न थीं। उन्हें किसी पंथ–विशेष पर आग्रह नहीं था। जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है, वहीं उन्होंने उसे सिरमाथे चढ़ाया है। इस प्रकार कभी उनका तुलसीदास जी को पत्र लिखना दर्शाया गया तो कभी वे स्वयं गोपीचंद, कबीर आदि का नाम अपने पद में लेती हैं। तुलसीदास ने उन्हीं के पत्र के उत्तर स्वरूप "जाके प्रिय न राम वैदेही, सो नर तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही" की रचना की थी। परंतु यह अप्रामाणिक तथ्य है। उनके पदों में संतों के नाम हैं, इसका उदाहरण देखिए:

"सुँण सुँण बचन साहब सतगुरु का, गोपीचंद उठ भागा।...
आठूँ पहर कबीरा जागा, मरण जीवण भय लागा।"...

बहरहाल, इससे यह ज्ञात होता है कि मीरा ने किसी मार्ग में दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। अतः उन्हें किसी एक परिधि में आबद्ध करने का अन्याय नहीं किया जा सकता।

कोई आलोचक कवयित्री मीरा के भक्त रूप को अधिक महत्व देता है तो कोई उनके संत रचनाकार रूप को। परंतु प्रस्तुत विवेचना के आधार पर एक ओर मीराबाई में संतों के रहस्यवाद, आत्मसमर्पण, विरहानुभूति, समानता, लोकसुधार, स्वानुभूति आदि के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं तो दूसरी ओर भक्त कवियों की भाँति सगुण–साकार गिरधार–नागर से नवधा भक्ति, स्वरूप वर्णन, भक्ति भाव का विभिन्न ढंग से चित्रण, दास्य भाव से, माधुर्यभाव से, स्वकीया रूप में भक्ति आदि तत्वों का दर्शन भी किया जा सकता है।

अंततः यदि उनके गुरु परंपरा से भी निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयत्न करें तो वह भी विफल है।

अंततोगत्वा यही कहा जा सकता है कि, मीराबाई राम, कृष्ण, निर्गुण, सगुण, नाथ पंथी, रहस्यवादी सबके बंधन छिन्न करती हुई ऐसी प्रेमधारा हैं जो अपने संपर्क में, अपने भावलोक में आने वाले सभी को परम संतोषप्रद रस का पान कराती हैं। मीरा से अधिक 'मुक्त' स्त्री की कल्पना कठिन है। न तो वे केवल संत कवयित्री हैं न ही केवल भक्त कवयित्री हैं। मीरा तो कृष्ण प्रेम में रंगी स्वतंत्र साधिका हैं। उन्हें किसी घेरे में बाँधकर नहीं रखा जा सकता। वे स्वयं अपने को वर्गांतर कर लेती हैं और सामान्यजन के बीच सामान्य मनुष्य की तरह रहती हैं। मनुष्यता की यही भाव भूमि उन्हें अन्य भक्तिकालीन कवियों से भिन्न करती हैं। उन्हें निर्गुण–सगुण से कोई तात्पर्य नहीं वे तो अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पित हैं एवं उनके प्रति यही उक्ति सार्थक है, "मीरा मगन भई हरि के गुण गाय"। यदि एक निष्कर्ष की अपेक्षा अब भी है तो कवयित्री मीरा का रूप सर्वप्रथम आता है एवं जहाँ तक संत अथवा भक्त कवयित्री की बात है वहाँ मीरा को भक्त एवं संत दोनों ही कोटि में रखा जा सकता हैं। उनमें नारी की वह समरसता है जिसे किसी एक विशिष्ट पात्र की आवश्यकता नहीं उनका मधुर रस जहाँ भी प्लावित होगा भक्त के हृदय को मधुरता से पूर्ण कर देगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. शर्मा रामकिशोर, सुजीत कुमार, मीराबाई की संपूर्ण पदावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करणः 2016
2. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, नवीन संस्करणः 2014
3. द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, तेइसवाँ संस्करणः 2019
4. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पाँचवी आवृत्तिः 2013
5. डॉ नागेंद्र डॉक्टर हरदयाल हिंदी साहित्य का इतिहास मयूर पेपर बैग्स प्रकाशन इंदिरापुरम 55 एवं 56 व संस्करण 2017

संदर्भ सूची

1 सं. शर्मा रामकिशोर, सुजीत कुमार, मीराबाई की संपूर्ण पदावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करणः 2016, पृष्ठ–32
2 सं. शर्मा रामकिशोर, सुजीत कुमार, मीराबाई की संपूर्ण पदावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करणः 2016, पृष्ठ– भूमिका
3 सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पाँचवी आवृत्तिः 2013, पृष्ठ 132
4 सं. शर्मा रामकिशोर, सुजीत कुमार, मीराबाई की संपूर्ण पदावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करणः 2016, पृष्ठ–33
5 सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पाँचवी आवृत्तिः 2013, पृष्ठ 134
6 द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, तेइसवाँ संस्करणः 2019, पृष्ठ–112
7 वही
8 शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, नवीन संस्करणः 2014, पृष्ठ संख्या–109
9 वही
10 सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पाँचवी आवृत्तिः 2013, पृष्ठ 134
11 सं. शर्मा रामकिशोर, सुजीत कुमार, मीराबाई की संपूर्ण पदावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करणः 2016, पृष्ठ–53
12 वही, पृष्ठ–67
13 द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, तेइसवाँ संस्करणः 2019, पृष्ठ–112